माफ़ी / फ़रीद ख़ान

सबसे पहले मैं माफ़ी मांगता हूँ हज़रत हौव्वा से.
मैंने ही अफ़वाह उड़ाई थी कि उस ने आदम को बहकाया था
और उसके मासिक धर्म की पीड़ा उसके गुनाहों की सज़ा है जो रहेगी सृष्टि के अंत तक.
मैंने ही बोये थे बलात्कार के सबसे प्राचीनतम बीज.

मैं माफ़ी माँगता हूँ उन तमाम औरतों से
जिन्हें मैंने पाप योनी में जन्मा हुआ घोषित करके
अज्ञान की कोठरी में धकेल दिया
और धरती पर कब्ज़ा कर लिया
और राजा बन बैठा. और वज़ीर बन बैठा. और द्वारपाल बन बैठा.
मेरी ही शिक्षा थी यह बताने की कि औरतें रहस्य होती हैं
ताकि कोई उन्हें समझने की कभी कोशिश भी न करे.
कभी कोशिश करे भी तो डरे, उनमें उसे चुड़ैल दिखे.

मैं माफ़ी मांगता हूँ उन तमाम राह चलते उठा ली गईं औरतें से
जो उठा कर ठूंस दी गई हरम में.
मैं माफ़ी मांगता हूँ उन औरतों से जिन्हें मैंने मजबूर किया सती होने के लिए.
मैंने ही गढ़े थे वे पाठ कि द्रौपदी के कारण ही हुई थी महाभारत.
ताकि दुनिया के सारे मर्द एक होकर घोड़ों से रौंद दें उन्हें
जैसे रौंदी है मैंने धरती.

मैं माफ़ी मांगता हूँ उन आदिवासी औरतें से भी
जिनकी योनी में हमारे राष्ट्र भक्त सिपाहियों ने घुसेड़ दी थी बन्दूकें.
वह मेरा ही आदेश था.
मुझे ही जंगल पर कब्ज़ा करना था. औरतों के जंगल पर.
उनकी उत्पादकता को मुझे ही करना था नियंत्रित.

मैं माफ़ी मांगता हूँ निर्भया से.
मैंने ही बता रखा था कि देर रात घूमने वाली लड़की बदचलन होती है
और किसी लड़के के साथ घूमने वाली लड़की तो निहायत ही बदचलन होती है.
वह लोहे की सरिया मेरी ही थी. मेरी संस्कृति की सरिया.

मैं माफ़ी मांगता हूँ आसिफ़ा से.
जितनी भी आसिफ़ा हैं इस देश में उन सबसे माफ़ी मांगता हूँ.
जितने भी उन्नाव हैं इस देश में,
जितने भी सासाराम हैं इस देश में,
उन सबसे माफ़ी मांगता हूँ.

मैं माफ़ी मांगता हूँ अपने शब्दों और अपनी उन मुस्कुराहटों के लिए
जो औरतों का उपहास करते थे.

मैं माफ़ी मांगता हूँ अपनी माँ को जाहिल समझने के लिए.
बहन पर बंदिश लगाने के लिए. पत्नी का मज़ाक उड़ाने के लिए.

मैं माफ़ी चाहता हूँ उन लड़कों को दरिंदा बनाने के लिए,
मेरी बेटी जिनके लिए मांस का निवाला है.

मैंने रची है अन्याय की पराकाष्ठा.
मैंने रचा है अल्लाह और ईश्वर का भ्रम.
अब औरतों को रचना होगा इन सबसे मुक्ति का सैलाब!

फिर वो हिंदोस्तान दे मौला / नूर मोहम्मद नूर

कान वालो को, कान दे मौला
और मुझको, ज़ुबान दे मौला
तेरे दैरोहरम, बनाते जो
उनको भी इक मकान दे मौला
हाथ पे हाथ रख के बैठा हूं
अब तो तीरोकमान दे मौला
एकदम से सिफर नहीं मै भी
कुछ तो ऐसे गुमान दे मौला
पहले जैसा लगे, दिखाई दे
फिर वो हिंदोस्तान दे मौला
जिसमें सब उड़ सकें परिंदों सा
नूर का आसमान दे मौला
फिर वो हिंदोस्तान दे मौला

एक पेड़ की वजह से नहीं गया पाकिस्तान!

नसीम का मतलब है शीतल, मंद, सुगंधित हवा। सईद अख़्तर मिर्ज़ा के निर्देशन में बनी फ़िल्म 'नसीम' में यह एक ख़ूबसूरत, प्यारी, निश्छल-सी लड़की का नाम है, जो अपने दादा से बहुत लगाव रखती है। दादा की भूमिका में मशहूर कवि कैफ़ी आज़मी हैं और पिता का अभिनय किया है विख्यात अभिनेता कुलभूषण खरबंदा ने। फिल्म में कैमरा ज़्यादातर एकाग्र रहता है एक मुस्लिम परिवार पर, जिसमें तीन पीढ़ियाँ एक साथ रह रही हैं। पृष्ठभूमि में बीसवीं सदी के आखिरी दशक की शुरूआत में चले कथित 'रामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन' की वे घटनाएँ हैं, जिनकी चरम परिणति अयोध्या में बाबरी मस्जिद को ढहाये जाने में हुई थी। यह स्वाधीन भारत के इतिहास की सबसे दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में-से एक थी, क्योंकि यह सिर्फ़ किसी प्रार्थनागृह का ध्वंस नहीं, बल्कि हमारे देश की धर्मनिरपेक्ष संरचना पर किया गया मर्मांतक आघात था। तभी शायद जावेद पाशा ने एक कविता में लिखा = 'जब मस्जिद गिरायी जा रही थी / तो मैं फूट-फूटकर रो रहा था / मस्जिद के लिए नहीं / इस देश के / भवितव्य के लिए।'

1947 में जब हिंदुस्तान आज़ाद हुआ, तो इस ट्रेजेडी के साथ कि इसका विभाजन हो गया। इस सदमे के बावजूद स्वतंत्र भारत के शिल्पकारों ने सुनिश्चित किया कि अपनी सामासिक या गंगा-जमुनी संस्कृति को भरसक अक्षुण्ण रखना है और साम्प्रदायिक वैमनस्य से इसे आहत नहीं होने देना है। इसीलिए यह खुली छूट दी गयी कि जो लोग पाकिस्तान जाना चाहें, जायें और जो यहीं अपने वतन में रहना चाहें, निश्चिंत होकर रहें, उनके साथ बराबरी का सुलूक होगा और उनके किसी अधिकार का हनन नहीं किया जायेगा। इसी उदात्त राजनीतिक विचारशीलता और मनुष्यता से अभिभूत होकर असंख्य मुसलमान पाकिस्तान नहीं गये। मगर कोई आधी सदी बीतते-न-बीतते कैसे साम्प्रदायिकता की विषाक्त राजनीति उनके इस विश्वास को लहूलुहान करने लगी, 'नसीम' इस प्रक्रिया की मर्मस्पर्शी दास्तान है, जिसे आप सिनेमा के परदे पर देख सकते हैं।

फिल्म में नसीम के घर से लेकर स्कूल, सिनेमा हॉल और शहर तक समूचा परिवेश अप्रत्याशित साम्प्रदायिक नफ़रत की चपेट में है, उसकी मनहूस छाया में साँस लेने को मजबूर। दूरदर्शन के ज़रिए हिंसक दंगों की जो ख़बरें आती रहती हैं और उसके असर में आसपास जिस तरह के संवादों और घटनाओं का सिलसिला चलता है, उनसे प्रभावित लोगों का मानसिक तनाव लगातार बढ़ता और सघन होता जाता है। इसका चरम बिंदु तब आता है, जब मस्जिद अंततः ढहा दी जाती है। एकबारगी जैसे किसी यक़ीन का शीराज़ा बिखर जाता है। पात्र अवसन्न और निःशब्द रह जाते हैं और उनके पास कहने को कुछ बचता नहीं, सिवा इस प्रश्न के कि इस देश में उनकी जगह या होने का औचित्य क्या है ? इसी परिस्थिति में उन्हें यह अवसाद या एक क़िस्म का नकारात्मक पश्चात्ताप घेरने लगता है कि हमारे अभिभावकों ने आज़ादी के वक्त पाकिस्तान जाना क्यों नहीं चुना था ?

तनाव के अद्वितीय अभिनेता कुलभूषण खरबंदा फ़िल्म में अपने पिता की भूमिका में कैफ़ी आज़मी से पूछते हैं 'अब्बू, मुल्क जब आज़ाद हुआ, तो आप पाकिस्तान क्यों नहीं गये ?'

नसीम का घर आगरा में दिखाया गया है। पिता बहुत ज़हीन, सहृदय और प्रभावशाली होने के बावजूद बूढ़े और अशक्त हो गये हैं और अक्सर बिस्तर पर ही रहते हैं। माँ दिवंगत हो चुकी हैं। बेटे का सवाल सुनकर वह छड़ी के सहारे बमुश्किल अपने कमरे के दरवाज़े तक आते हैं और बाहर बाग़ीचे में शायद आम के एक पुराने पेड़ की ओर इशारा करके कहते हैं = 'यह दरख़्त देख रहे हो न ! यह तुम्हारी अम्मी को बहुत पसंद था।'

यह एक राजनीतिक प्रश्न का निहायत ग़ैर-राजनीतिक जवाब है, लेकिन इतना नेक और संजीदा कि किसी भी फ़िरक़ापरस्त राजनीति पर भारी पड़ता है। यह प्यार है, जिसकी बदौलत हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में सौंदर्य पैदा होता है और यह बुनियादी तौर पर महसूस करने की चीज़ है, किसी को नसीहत देने की नहीं। अगरचे इससे रूबरू होकर इस एहसास से हमारी आँखें भीग जाती हैं कि हम होशियार तो बहुत हुए, पर इसे समझने लायक़ इंसान शायद अभी तक नहीं हुए।

-साइबर नजर

कौन भरता है हमारे दिमाग़ों में हिंदू-मुसलमान

डियर हिंदू भाइयों,

एक बहुत झूठी और आम बात है। मुझे दुःख है कि ये बात झूठ होते हुए भी आम है।

"मुस्लिम कितने भी सगे हों, आख़िर में अपना रंग दिखा ही देते हैं।" ये वो अल्फ़ाज़ है जो हम में से ज़्यादातर ने कहीं ना कहीं अपने किसी ख़ास से सुना है। ये 'ख़ास' अक्सर घर या खानदान के बड़े (महज़ उम्र में) होते थे। तो अमूमन हर बात कि तरह ही हम इनकी इस बात पर भी ऐतबार करते चले गए। अब ज़िन्दिगी के किसी मोड़ पर या किसी लम्हे पर हमारी किसी मुस्लिम यार से दोस्ती टूटी तो हमें कही गयी वो बात सच महसूस हुई। या ऐसा कुछ नहीं भी हुआ और हमने कभी ऐसा फ़ील भी नहीं किया तो किसी बड़े ने अपनी या किसी और कि सुनी सुनाई कहानी से हमें ऐसा फ़ील करने पर मजबूर कर दिया।

दोस्त! तुम ध्यान से सोचोगे तो तुम्हें समझ आएगा कि स्कूल, मोहल्ले और कोचिंग वगैरह सब को मिला कर भी तुम्हारी स्कूलिंग के दौर में तुम्हारे बामुश्किल दो चार मुस्लिम दोस्त होते थे, उनमे से अगर किसी एक से भी आगे चल कर तुम्हारा झगड़ा या मन मुटाव होता है तो तुम्हारे दिमाग़ में वही एक लाइन क्लिक करती है। तुम्हें तुरंत लगता है कि सचमुच आखिर में ये रंग दिखा ही देते हैं। तुम अपने इस एक व्यक्तिगत अनुभव को जनरलाइज़ कर देते हो। क्योंकि तुम्हारे दिमाग में तो ये साइंस के किसी लौ कि तरह फ़िट कर दिया गया था।

ख़ैर .. अब फिरसे उन पन्नों को पलटो और अपने उन तमाम हिन्दू दोस्तों को याद करो जो तुम्हारे बहुत सगे हुआ करते थे, जिनसे तुम्हारी ख़ूब बनती थी। और वही दोस्त एक्ज़ाम के वक़्त दगा दे गए। या तुमसे किसी ना किसी कारण से जलकर तुम्हारी पीठ पीछे तुम्हारी बुराई की .. तुम्हारी प्रेमिका को बहकाया या किसी लड़की को बहकाकर तुम्हारी प्रेयसी बनने ही नहीं दिया। और ऐसी ही ना जाने कितनी बातें। कुछ एक चेहरे नज़रों के सामने कौंध रहे होंगे ना? कई बातें याद आ रही होंगी .. और शायद कई गालियां भी। पर ऐंड वक्त पे हिन्दू रंग दिखा जाते हैं या हिन्दू कभी हमारा सगा नहीं हो सकता जैसा कोई कॉन्सेप्ट याद आ रहा है क्या? नहीं ना? यार आना चाहिए न। दो चार मुस्लिम दोस्त थे बस। और उनमें एक भी ऐसा निकल गया तो LHS = RHS कर के सिद्ध कर दिया। पर हिंदुओं में यही गिनती दस होने पर भी ऐसा कुछ नहीं? ज़ाहिर है इस केस में ऐसा नहीं कहोगे क्योंकि कभी किसी बड़े ने अपने किसी बड़े से ऐसा कोई कॉन्सेप्ट ना तो सुना और ना सुनाया। और ना ही तुम्हारे दिमाग़ ने कभी इस तरह सोचा। पर मुस्लिम के लिए ये ज़हर बड़ों ने तुममे बोया और तुमने चंद पर्सनल एक्सपीरियंस कि वजह से सच मान लिया।

मेरे कुछ मुस्लिम दोस्त रहे, उनमे से कुछ अब सिर्फ़ दुआ सलाम वाले हैं और कुछ दोस्त ही नहीं है। इसके पीछे कारण वही हैं जो तमाम हिन्दू दोस्तों से थोड़ा अलग हो जाने कि वजहें हैं। अगर तुम्हारी ही तरह भारी भरकम लफ़्ज़ों में कहूँ तो कई हिन्दू दोस्तों से धोखा मिला और इसलिए उनसे आगे नहीं बन पाई। पर मैंने अपने उस व्यक्तिगत अनुभव को जनरलाईज़ नहीं किया। मैंने कभी नहीं कहा कि हिन्दू होते ही ऐसे हैं। मेरे जो कुछ मुस्लिम दोस्त रहे उनमे एक पक्का वाला दोस्त रहा %शाहरुख। अब भी है। दोस्ती को सात साल होने जा रहे हैं, कभी ऐसी कोई बात नहीं आई। मैं जिन लोगों से प्यार से भइया बोलता हूं उनमे तमाम लोग मुस्लिम हैं और मुझे हमेशा उन्होंने अपने छोटे भाई कि तरह ही माना। यकीन मानो ऊपर कही गयी वो बात मुझसे भी कई बड़ों ने कही थी, शुरू में हर किसी कि तरह यही माना कि बड़े हैं सच ही बोल रहे होंगे। पर जब ख़ुद से सोचा और समझा तो वो बात एक फ़रेब और ज़हर से ज़्यादा कुछ नहीं लगी। हमारे बड़े ख़ुदा नहीं हैं। इस बात को समझो। जो उन्होंने महसूस किया वो ज़रूरी नहीं कि तुम भी महसूस करो। उनकी बताई हर बात सही नहीं होती। सुनी हुई हर बात को तसल्ली से समझो और ख़ुद को वक़्त देकर ख़ुद फ़ैसला करो।

'मुस्लिम आख़िर में धोखा दे देते हैं' जैसी बातें बहुत फ़रेबी हैं यार! .. तुम जब और मुस्लिमों से मिलोगे, उनसे बातें करोगे, दोस्ती करोगे तो तुम ख़ुद बा ख़ुद समझ जाओगे कि हम कितने बड़े झूठ को सच मानकर जी रहे थे।

दोस्त! बड़ों से झूठ बोला गया था .. बड़ों ने वो झूठ ढोया .. तुम आने वाले वक्त के बड़े हो, तुम ये गलती मत करना। वरना मुझे डर है कि आगे कोई ऋषभ किसी शाहरुख से दोस्ती नहीं करेगा।

तुम्हारा भाई
ऋषभ दूबे (मोहम्मद असग़र का दोस्त)

बच्चों के सर्वांगीण विकास में सभी का समान दायित्व

प्रकृति ने मनुष्य को छोड़कर बाकी सभी जीवों को कुछ ऐसी शक्तियाँ प्रदान की हैं कि वे अपने आप ही अपनी प्रकृतियों को सीख लेते हैं जैसे चिड़िया उड़ना सीख जाती है, मछलियाँ तैरना सीख जाती हैं, बंदर पेड़ पर चढ़ना सीख जाते हैं परन्तु मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है जो अपने आस पास के वातावरण को देखकर ही सीखता है। बालक सबसे पहले अपने माता- पिता का अनुसरण करता है फिर वह अपने आस-पड़ोस को देखकर भी सीखता है और अनेक चीज़ें वह अपने विद्यालय व शिक्षकों से भी सीखता है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि बच्चा अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं से ही देखकर ही सीखता है इसलिए बच्चो के विकास का दायित्व अकेले एक विद्यालय और उसके शिक्षक पर नहीं हो सकता बल्कि विभिन्न तत्व इसके लिए उत्तरदायी होते हैं।

बालक जो कुछ देखता है उसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर अवश्य पड़ता है। हम जैसा वातावरण बच्चों को देंगे बच्चा वैसा ही सीखेगा। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य केवल नकल करके या फिर देखकर ही सीखता है और इस कार्य में समाज में और आस-पास घटित होने वाली प्रत्येक परिस्थितियों का उत्तरदायित्व होता है। फिर चाहे वह ट्रैफिक के नियम हो, इंटरनेट का दुरुपयोग या अन्य भौतिक सुख सुविधाओं का प्रयोग हो इन सभी का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। युनेस्को ने भी एक सर्वे के माध्यम से यह बताया कि सभी परिस्थितियों के लिए अध्यापक व विद्यालय ज़िम्मेदार नहीं हो सकते अत: बालक का सर्वांगीण विकास करने के लिए आवश्यक है कि उसे उपयुक्त परिस्थितियाँ मिलें। इसके लिए अभिभावक, समाज और शिक्षक एकजुट होकर एक अच्छे वातावरण का निर्माण करें और तभी एक आदर्श नागरिक आदर्श समाज का निर्माण हो सकेगा।

ऋषिपाल चौहान
चेयरमैन
जीवा पब्लिक स्कूल